दिदिया
और काका को

'मेरे आरम्भ में ही मेरा अन्त है'

—टी० एस्० ईलियट

शहर अब भी सम्भावना है

•

अशोक वाजपेयी

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक 228
सम्पादक एवं नियोजक
लक्ष्मीचन्द्र जैन, जगदीश, डॉ. विमलप्रकाश जैन

Lokodaya Series : Title No. 228
SHAHAR AB
BHEE SAMBHAVANA HAI
(*Poems)*
ASHOK VAJPEYIE
First Edition : 1981
Price : Rs. 16.00

BHARATIYA JNANPITH
B/45-47, Connaught Place
NEW DELHI-110001

शहर अब भी सम्भावना है
(कविता)
अशोक वाजपेयी

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/45-47, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-110001
प्रथम संस्करण : 1981
मूल्य : सोलह रुपये

मुद्रक
मित्तल प्रिण्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-32

शहर
अब भी
सम्भावना है

क्रम

०००

अपनी आसन्नप्रसवा माँ के लिए तीन गीत

काँच के टुकड़े

काँच के आसमानी टुकड़े
और उनपर बिछलती सूर्य की करुणा
तुम उन सबको सहेज लेती हो
क्योंकि तुम्हारी अपनी खिड़की के
आठों काँच सुरक्षित हैं
और सूर्य की करुणा
तुम्हारे मुँडेरों भी
रोज़ बरस जाती हैं।

जीवित जल

तुम ऋतुओं को पसन्द करती हो
और आकाश में
किसी-न-किसी की प्रतीक्षा करती हो—
तुम्हारी बाँहें ऋतुओं की तरह युवा हैं
तुम्हारे कितने जीवित जल
तुम्हें घेरते ही जा रहे हैं।
और तुम हो कि फिर खड़ी हो
अलसायी, धूप-तपा मुख लिये
एक नये झरने का कलरव सुनतीं
—एक घाटी की पूरी हरी महिमा के साथ!

जन्मकथा

तुम्हारी आँखों में नयी आँखों के छोटे-छोटे दृश्य हैं,
तुम्हारे कन्धों पर नये कन्धों का
हलका-सा दबाव है—
तुम्हारे होठों पर नयी बोली की पहली चुप्पी है
और तुम्हारी उँगलियों के पास कुछ नये स्पर्श हैं
माँ, मेरी माँ,
तुम कितनी बार स्वयं से ही उग आती हो
और माँ, मेरी जन्मकथा कितनी ताज़ी
और अभी-अभी की है !

१९६०

साँझ : शिशुजन्म

—मैंने सुना
बरसात की उस धुली शाम
मैंने सोचा
अशोक का भी तो फूल होता है
जिसे मैंने नहीं देखा,
प्रतीक्षा मैं कर नहीं सकता
न की है
फूल की—
कि एक साँझ बुझते आलोक में
देखूँ कि खिड़की के पास,
उसके सींकचे से लिपटा
खिल आया है फूल एक, साँझ का, गुलाब में :

मुझे लगा
झरना कहीं एक हरे पेड़ के नीचे से
बहकर चुपचाप
कहीं पास, बहुत पास मेरे आ गया है

मैंने कहा :
इस धुली शाम के सड़कों पर बिखरे
धुँधले और छोटे अनगिनत आइने हैं
धूप का टुकड़ा भी साँझ का है
और वह,
जो अभी उन पेड़ों के शिखरों पर दमका है

मैंने गाया—
कल का दिन धूप की नदी हो
कल का दिन नन्हीं-सी चिड़िया हो
कल का दिन भीगी-हरी डाल पर खिला-धुला
फूल हो—

१९५९

माँ

खिड़की के पार
चमकतार अन्धकार
अलग-अलग विरूप चेहरों में
        बँट गयी भीड़ की तरह
भयभीत करते हैं तुम्हें तारे

एक भारी ठण्डक में सहमा हुआ
तुम्हारा शरीर याद करता है
अपना निरन्तर अपमान—
तुम्हारा हृदय पश्चात्ताप बनकर
डूबने लगता है तुम्हारे शरीर की घृणा में
कि तभी तुम्हारे हाथ अचानक छू लेते हैं
बग़ल में सोये पाँचवें बच्चे का शान्त-सरल शरीर
तुम्हारी आँखों में तिर आती है जन्मकथा
और शरीर बन जाता है एक स्वप्नमय भविष्य
खिड़की के पार तारे स्वर्ग से झिलमिलाते हैं
और तुम्हारा हृदय
एक प्रार्थना-सा उनकी ओर बढ़ने लगता है
भोर होने के बहुत पहले
तुम्हारी दैनिक भोर होती है।

●●

लौटकर जब आऊँगा

माँ,
लौटकर जब आऊँगा
क्या लाऊँगा ?
यात्रा के बाद की थकान,
सूटकेस में घर-भर के लिए कपड़े,
मिठाइयाँ, खिलौने,
बड़ी होती बहनों के लिए
अन्दाज़ से नयी फ़ैशन की चप्पलें ?
या रक्त की एक नयी सिद्धि
और गढ़ी हुई वीरगाथाएँ ?

क्या मैं आकर कहूँगा
मैंने दिन काटे हैं—एक समृद्ध आदमी की तरह
अपने परदे-ढँके कमरे की खिड़की से
मकानों की काई-रची दीवारों पर
निर्विकार आती सुबह देखते हुए ?

या क्षुद्रताओं की रक्षा में
निर्जन द्वीप-समूहों में
समुद्र से अकेले लड़ते हुए ?

क्या मैं बताऊँगा
कि मैं आया हूँ

अँधेरी गुफाओं में से
जहाँ भूखी क़तारें
रह-रहकर चिल्लाती हैं
गिद्धों और चीलों की चीत्कारों के बीच
माँ, तुम्हारा प्रिय शोकगीत
'रघुपति राघव राजाराम...'?

क्या मैं तुमसे कहूँगा
ख़ुश हो माँ, अन्त आ गया है
—जिसकी तुम्हें प्रतीक्षा थी
क्योंकि मैंने देखा है
नीले अश्व पर आरूढ़
भव्य अवतारी पुरुष को ?

या मैं सिर्फ़ एक क़िस्सा सुना पाऊँगा
नीले घोड़े पर सवार एक पिचके निर्वीर्य चेहरे वाले
आदमी की मौत का
एक छोटे-से गाँव में ?

या तुम्हारी तीखी नज़र को बचाते हुए
दूसरे खिलौनों के साथ
अपने छोटे भाई को दूँगा
एक काठ का नीला घुड़सवार ?

—क्या मैं लौटूँगा
अपनी निर्जल आँखों में अपमान भरे
जो अब हर रास्ते पर छाया है
आकाश की तरह
और तब,

क्या तब तुम पहली बार पहचानोगी
मेरे चेहरे में छुपा
अपना ही ईश्वरदूषित चेहरा ?

माँ,
लौटकर जब आऊँगा
क्या लाऊँगा ?

●●

वसन्त के लिए एक कामना

अभी मेरे पास
सिर्फ़ तेरी आँखों की चमक है—
वाद्यगीतों और गूँजती आवाज़ों के बीच
मुझे सुनने दो, सीढ़ियों के पास
अपने लिए खिला वसन्त-सुमन !

उत्सव की लपटों में
मेरा नगर जल रहा है,
मेरे मित्रों की आँखें सूखकर
चट्टानों के काले टुकड़े बनती जा रही हैं—
और एक छूँछा आकाश मेरे सिर पर लदता जा रहा है !

सिर्फ़ मेरे हाथ हैं
—जो भाषा सँभाले हैं
सिर्फ़ मेरे होठ हैं
—जो गान थामे हैं
धुएँ से आग से मुझे बचाने दो
वह सुलगी हुई भाषा और
वह पिघलता संगीत !

मुझे छूने को वह पीला आलोक वेग
वे पत्तियों की हरी रचनाएँ
वह खिलखिलाता हरा दृश्य—

मुझे भेंटने दो, वह वसन्त
वह मेरा रक्त-सुमन !

ओ खोते हुए वाद्यकारो, ओ मिटते हुए उत्सवनगर,
ओ गूँजती हुई आवाज़ोंवाले लोगो,
मुझे सुनने दो
सीढ़ियों के पास बनती
अपने लिए, रक्ताभ धुन
—वह वसन्त-सुमन !

१६६०

युवा जंगल

एक युवा जंगल मुझे,
अपनी हरी उँगलियों से बुलाता है।
मेरी शिराओं में हरा रक्त बहने लगा है
आँखों में हरी परछाइयाँ फिसलती हैं
कन्धों पर एक हरा आकाश ठहरा है
होठ मेरे एक हरे गान में काँपते हैं :
मैं नहीं हूँ और कुछ
बस एक हरा पेड़ हूँ
—हरी पत्तियों की एक दीप्त रचना !
ओ जंगल युवा,
बुलाते हो
आता हूँ
एक हरे वसन्त में डूबा हुआ
आऽ ताऽ हूँ—

१९५९

सूर्यास्त

सूर्यास्त ने चेहरों पर लिख दिया
संगीत का
एक मौन !
एक चेहरे में काँपी एक टहनी,
एक चेहरा कुसुमित हो आया
थकते नयनों में
झिलमिलाया
ठहर गया फिर-फिर आलोकजल !
चेहरा के उस करुण संयम में
साँझ-गन्धित काँप गया मैं भी
कहीं खिलने की पीड़ा से
न टहनी-सा, न कुसुम-सा, न कलरव-सा
फिर भी मैं काँप गया—
बार-बार
अपने ऊसर आकाश से
रक्तकुसुमित चेहरे को
पुकारता-पुकारता।

१९६१

उषाओं के गर्भ में

उषाओं के गर्भ में भटकती
मेरी आवाज़ है

और असंख्य छायाभासों के पीछे कहीं
आकाश-सी सोयी हुई तू है
कि काँपता-सिहरता लयों का सुनसान
जो शायद मैं होता
कि झिलमिल उत्सुक उजालों का बहाव
जो शायद तू होती !

आ
कि आ जिसकी प्रतीक्षा में मैं हूँ
तू है
उसे सचमुच जन्म दें !

आ
इन खुलती आभाओं के पीछे कहीं से आ
और मेरी भटकती आवाज़ को थाम
एक नीरव तारे-सा स्थिर कर दे !

आ
उषाओं के गर्भ में भटकती
मेरी अँधेरी आवाज़ है—

१६६०

●●

पहला चुम्बन

एक जीवित पत्थर की दो पत्तियाँ
रक्ताभ, उत्सुक
काँपकर जुड़ गयीं,
मैंने देखा :
मैं फूल खिला सकता हूँ ।

१९६०

प्यार करते हुए सूर्य-स्मरण

जब मेरे होठों पर
तुम्हारे होठों की परछाइयाँ झुक आती हैं
और मेरी उँगलियाँ
तुम्हारी उँगलियों की धूप में तपने लगती हैं
तब सिर्फ़ आँखें हैं
जो प्रतीक्षा करती हैं मेरे लौटने की
उन दिनों में जब मैं नहीं जानता था
कि दो हथेलियों के बीच एक कुसुम होता है
—सूर्यकुसुम !

जब अँधेरे दरवाज़े पर खड़े होकर
तुम एक गीत अपने कन्धों से
मेरी ओर उड़ा देती हो
और मैं एक पेड़ की तरह खड़ा रहता हूँ
तब सिर्फ़ आँखें हैं
जो प्रतीक्षा करती हैं मेरे लौटने की
उन दिनों में, जब मै नहीं जानता था
कि दो चेहरों के बीच एक नदी होती है
—सूर्यनदी !

जब तुम मेरी बाँहों में
साँझ-रंग-सी डूब जाती हो
और मैं जलबिम्बों-सा उभर आता हूँ

तब सिर्फ़ आँखें हैं
जो प्रतीक्षा करती हैं मेरे लौटने की
उन दिनों में, जब मैं नहीं जानता था
कि दो देहों के बीच एक आकाश होता है
—सूर्यआकाश !

१९६०

जब हम प्यार करते हैं

जब हम प्यार करते हैं
तब यह नहीं कि आकाश अधिक दयालु हो आता है
या कि सड़कों पर अधिक खुशी चलने लगती है
बस यही कि कहीं किसी बच्ची को
अपनी छत से उगता सूरज
और पड़ोस की बछिया देखना अच्छा लगने लगता है
कहीं कोई भीड़ में बुदबुदाते होठों में प्रार्थना लिये
एक जनाकीर्ण सड़क सकुशल पार कर जाता है
कहीं कोई शान्त मौन जल
कंकड़ से नहीं, अपने संगीत से जगाता बैठा रहता है

जब हम प्यार करते हैं
तो दुनिया को छोटे-छोटे अंशों में सिद्ध करते हैं
और सुन्दर भी, और समृद्ध भी···
हम वसन्त को आसानी से काट देते हैं
और उसे एक ऐसे संयोग में गढ़ देते हैं
जो न ऋतुगान होता है, न टहनियाँ और न कोई स्पष्ट आकार
न काव्य, और न फूलों—चिड़ियों का कोई सिलसिला—
हम उसे दुनिया के हाथों में फेंक देते हैं
और दुनिया जब तक उसे देखे-परखे
हम चल देते हैं
छुप जाते हैं
ऋतु में, या काव्य में, या टहनियों के आकाश में—

१६६०

●●

वसन्त-दिन

आज का दिन पूरा का पूरा एक वसन्त है
कल पत्ते नहीं थे और कल झर चुके होंगे
आज का दिन पूरा का पूरा एक वसन्त है
और तुम एक वृक्ष हो
अपनी हर उग सकनेवाली पत्ती के
और अपने हर खिल सकनेवाले फूल के साथ
और सिर्फ़ इतनी झुकी हुई
कि मैं तुम्हें उठँग कर छू ले सकता हूँ

१६६०

••

एक वसन्त की तरह

मैं जो
कुछ नये फूल, सफ़ेद बादल
और उजली धूप देता हूँ
तो कहीं लिखा नहीं जायेगा
कि मैंने ये तुम्हें दिये थे
और तुमने एक वसन्त की तरह
इन्हें स्वीकार कर लिया था :
दिन और वर्ष सब झर जायेंगे
और ढँक लेंगे उस राह को
जिस पर तुम्हारे अंगों से
गिर पड़े थे फूल,
फिसल गया था बादल,
और उझक पड़ी थी धूप,
तो कहीं लिखा नहीं जायेगा कि
मैं उन्हें बटोर लाया था
पतझर के पहले पत्तों-सा
और फिर देख सका था तुम्हें
उनसे सजा-सँवरा
एक वसन्त की तरह—

१९५९

●●

सुबह

चेहरा खो गया है
रात में परछाइयों के बीच
लोगों में
चेहरा वह
हरी-हरी पत्तियों में घिरा
एक थका-कुम्हलाया फूल
डाल से जुड़ा
चेहरा वह :

सुबह का आकाश चुप है
कुहरे में डूबे अदृश्य के
तल से उभर
झिलमिला गया है
एक हरा पेड़
—चेहरा वह ?
…चेहरा खो गया है…

१९५९

स्मरण : नागफनी

तेरे स्मरण का असीम सुख मुझे
कि काँटा भी फूल आया मेरे बगीचे।

१६६०

••

स्टेशन पर विदा

तू अपना यौवन, अपनी हँसी
मेरे पास छोड़ गयी
और तुझे ले गयी
कोयले और पानी से चलती एक रेलगाड़ी।

१९६१

साँझ

साँझ
साँऽ झऽ
हर चेहरा विदा है—

१९५९

••

दुःख तेरे होने का

आत्मसमर्पण के क्षण में
जब तू फूट-फूट कर रो उठती है
अपनी करुणा से घिर कर,
—तो जानती है मुझे क्या देती हैं तेरी आँखें,
तेरे अनावृत उरोज और सिहरता कनकतन :
एक दुःख तेरे होने का,
और होकर प्यार करने का,
और प्यार कर समर्पित हो जाने का।
फिर मैं तुझे कामना से नहीं देख पाता
क्योंकि आँसुओं में डूबकर तू इतनी अधिक मेरी हो जाती है
कि मुझे सुन्दर और अस्पृष्ट और अक्षत लगने लगता है
मेरी बाँहों में समाया तेरा बचपन
जिसमें तू रोती है
और जो दुःख देता है
        तेरे होने का—

१९६०

अवधि

हमारे शरीर एक सौन्दर्य की रचना में गुँथे हों
तो मैं तुझे होने दूँगा तब तक
जब तक तू तृप्त न हो ले
और मुझे करुण न होना पड़े—
बँधा रहने दूँगा अपने चुम्बन में तुझे
तब तक
जब तक तू उस अनुभव में जीवन्त रहे
और मुझे क्षमा न करना पड़े—
—वैसे ही जैसे तुझे रहने दूँगा कपड़ों में
तब तक जब तक तेरे शरीर को
अपनी वासना से सुन्दर और उत्सुक नहीं कर लेता—
तब तक होने दूँगा तुझे :

१९६०

••

प्यार करने के लिए

जब प्यार से नहीं करुणा से
तू मुझे बुनती है
अपने मन-चाहे रूपाकारों में
तब मैं भी नष्ट नहीं होता
और न ही खो पाता हूँ
तेरे मन्दिर-शिखर, प्रार्थना-गायन,
सुमन-गन्ध के बीच भी
स्पष्ट रहता हूँ
कि तू मुझे बाद में पहचान कर
प्यार कर सके, एक निराकुल भाव से,
और करुणा को भूलकर भी
मुझे समृद्धि दे सके—

१६६०

कहाँ होती है दुनिया

कहाँ होती है दुनिया उस समय
जब मैं तुझे अपने सारे अंगों से थाम लेता हूँ
और एक तृप्ति में स्थिर कर देता हूँ
तेरा सौन्दर्य ?
जब हम सुन्दर होते हैं
अपने शरीर के उस विह्वल गुम्फन में
कहाँ होती है दुनिया उस समय
उसके वे क्षुब्ध पिता और पागल-परेशान भाई
क्यों उस समय दफ़्तरों या क्लासों में
काम करते होते हैं,
और क्यों सिर्फ़ हमारे लिए सुरक्षित छोड़ दिया जाता है
हलकी धूप से उजला सुनसान,
खिड़की के बराबर आकाश का एक नीला टुकड़ा
और एक उत्तेजक दोपहर ?
कहाँ होती है दुनिया उस समय
जो बाद में मोड़ पर मिलती है—परेशान
पर हमें अपमानित करने को तैयार,
अपनी-अपनी पत्नियों से अतृप्त अनुभवी बुज़ुर्गों की
बदहवास और हितैषी दुनिया
कहाँ होती है उस समय ?
—जब हम सुन्दर होते हैं
एक उत्तेजक दोपहर में
अपने शरीर के उस विह्वल गुम्फन में :

१९६१

अपने शरीर से कहने दो

पृथ्वी का दूसरा भाग प्रकाशित है—
एक हलकी गूँज में डूबा हुआ
यहाँ है सिर्फ़ अन्धकार :
आभा है तुम्हारे अस्पष्ट नेत्रों की शान्ति में
या उँगलियों के तप्त छोरों पर
जीवित शब्दों से दीप्त मेरे अधरों पर।

रात
अनुरक्त इच्छाओं की असीम विकलता है
आकाश के खिलते हृदय में—
और खिड़की-दरवाज़ों-दीवारों से सीमित
एक निजी अँधेरे में मुग्ध हैं हम :

बाहर संसार और उसके रात-दिन हैं
घूमने दो पृथ्वी को
उसकी धूप और अन्धकार के साथ,
हवाओं को अविदित बहती चली जाने दो,
पर इससे पहले
कि चेहरे खिड़की से झाँकें,
दरवाज़े के पीछे से आहट लें,
या अपनी स्मृति से विघ्न डालें
वह जो तुमसे कह चुका हूँ
तुम अपने शरीर से कहने दो—

१६६१

खुल गया है द्वार एक

जबसे तुमने अँधेरी उत्सुक देहों को
एक उज्ज्वल गुम्फन में कुसुमित होने दिया है
खुल गया है द्वार एक भविष्य में—
जब किसी उत्तेजना की धूप में
ठहर जाते हैं हमारे हाथ
हम उस द्वार को छू लेने को बढ़ रहे होते हैं;
और जब तृप्त होते हैं
किसी आत्मीय आकाश में दीप्त होकर हमारे चेहरे
तब तुम्हारी बाँह
एक खुलता-खुलता पथ है
जो उस द्वार तक जाता है
और मेरा हृदय उस पर झपकता हुआ
एक नीला तारा
जो धीरे-धीरे गाता है—

१६६१

सुनो

"इन यू ऐट एव्री मूमेण्ट, लाइफ़ इज़ अबाउट टु हैपन"

—अलबर्तो द' लासेर्दा

१

सुनो अपने हाथ दो
सुनो अपनी बाँह दो
सुनो अपने नयन दो
सुनो अपने होठ दो
सुनो यों थको मत
पसीजो मत
सुनो, सुनो यों ऐंठो मत

सुनो फूटो मत
धार-धार हो बहो मत
सागर तुम हो
नदी की सीमा
जो मेरी है, गहो मत
सुनो—

सुनो जो फिर एक छोटा उदय चमकेगा
उसे नाम मैं दूँगा
कल खिलेगा तुम्हारा टहनियों पर
फूल वह,

हिन्दुस्तानी एकेडमी, उ० प्र०
८८२३
(पुस्तकालय)
इलाहाबाद

वह सोनल शस्य तुम्हारा
उसे नाम मैं दूँगा
सुनो—
सुनो अपने हाथ दो—

२
सुनो अगर उदय की प्रतीक्षा विफल थी
तो क्या
तुम फिर हाथ दे सकती हो
बाँह दे सकती हो
सुनो अब भी सूखी टहनियों पर
चमकता है वह हलका आलोक-जल
अब भी ठहरा हुआ है
उत्सव-स्पर्श वह
सुनो अगर शस्य की
प्रतीक्षा विफल थी
तो क्या—

१९५९

••

अन्त तक

उस क्षण तक जीने देना मुझको
जब मैं और वह प्रियंवदा
एक डूबते पोत के डेक पर
सहसा मिलें।
दो पल तक न पहचान सकें एक दूसरे को,
फिर मैं पूछूँ:
"कहिए, आपका जीवन कैसे बीता?"
"मेरा···आपका कैसा रहा?"
"मेरा···"
और पोत डूब जाये।

१९५७

शामें गुज़र जाती हैं

किसी पेड़ से एक-एक कर
झर जाने वाली पत्तियों की तरह
शामें गुज़र जाती हैं
और लोग कॉफ़ी-हाउसों, पार्कों,
सिनेमाघरों या स्टेशन से
कुछ-न-कुछ कर लौट आते हैं
और जो नहीं आते
वे पार्क की बेंचों पर
या अँधेरे किसी भी स्थान पर
या तो प्यार करते हैं या व्यभिचार
—या ऐसा ही कुछ।
और मैं भी लौट ही जाता हूँ
उस सड़क से
जिससे आता या जाता रहा हूँ
पर जो मुझे कभी कहीं ले नहीं गयी
मैं लौट आता हूँ तुम तक
पीला और चुसा
और तुम भी लौट आती हो
रूखी और कठोर
उन कमरों में से कहीं से
जिन्हें हम एक दूसरे के सामने
घर कहते हैं
शामें गुज़र जाती हैं

हमें नहीं मालूम कि कब और कैसे
खिड़की से दिखने वाला
आकाश का नीला टुकड़ा
जलकर काला पड़ जाता है
हमें नहीं पता कि कारों और बसों
रिक्शों और ट्रामों
इमारतों; अनगिनत लोगों और भीड़ों
चक्करदार और लम्बी
और भरी-भरी सड़कों के बीच
जो अभी-अभी बचा है
गिरते या कुचलते या मरते
वह कौन है
मैं या तुम या कोई और
मैं सिर्फ़ लौट आता हूँ तुम तक
तुम सिर्फ़ लौट आती हो मुझ तक
और शामें गुज़र जाती हैं
किसी पेड़ से एक-एक कर
झरने वाली पत्तियों की तरह
धीरे-धीरे…

१६५८

रक्त में डूबी

तुम दूसरों की कविताओं के पास
चुपचाप बैठी हो
और मैं रक्त में डूबी एक सहमी पदचाप सुन रहा हूँ
पास आते,
—और पास आते !
तुम्हारी उँगलियाँ खाली नहीं हैं
और न बुनती हुई व्यस्त हैं
तुम्हारी उँगलियों से न कविताओं का भविष्य बँधा है
और न मेरी कोई पहचान
न किसी सूर्योदय की परछाईं
तुम्हारी उँगलियों से उँगलियाँ बँधी हैं
हाथ बँधे हैं
और मैं रक्त में डूबी एक सहमी पदचाप सुन रहा हूँ
और पास आते हुए···

कितनी शामें थीं
जो अपनी देहरी पर घुटनों से मुँह लगाये
पूरब-आकाश ताकते
मेरे बचपन के एक बीमार दोस्त की
आँखों में ठहर गयी थीं,
उन्हें लेकर खो गया वह, वहीं पर एक रात की तरह
और अब मैं तुम्हें देख रहा हूँ
उसी तरह, दूसरों की कविताओं के बग़ल में चुप,

सिर्फ़ रक्त में डूबती-डूबती पदचाप है
जो मुझे सुनाई दे रही है
तुम्हारी उँगलियों में उँगलियाँ हैं
हाथ हैं
पर तुम्हारी आँखों में
एक अकेला पुराना दिनान्त

१९६०

भिलाई में

जहाँ लोहे के लम्बे फैले जलते हाथों को
यन्त्र एक अमानवीय आवाज़ के साथ काटता है
वहाँ भी मैं गहरी नींद में सो जाऊँगा
और बिना किसी दुःस्वप्न में फँसे
सहज भाव से जाग सकूँगा—
और किसी मुद्रा या मधुवचन से अनाक्रान्त रहकर भी
तुझे याद रक्खूँगा :
एक अन्तहीन ग्रीष्म में भुला दूँगा ऋतुक्रम
पर पहचान लूँगा उन सुगन्धित दिनों को
जब मेरी बाहों में
तेरा अक्लान्त लावण्य खिल आयेगा :
एक मरणान्तक शोर होगा चारों ओर
और मेरा हृदय
गले हुए आलोक-स्फुरित लोहे की तरह
असंख्य मार्गों से तेरी ओर बहता रहेगा
जिसे मनचाहे सुखों में
तू ढालती रह सकेगी—

फिर एक रात जब
इस्पात की तरह भारी होने लगेगा
तेरा रक्त और तेरा हृदय और तेरा प्यार
तब मैं
लोगों और कोयले को ले जाती रेलगाड़ियों के नीचे से

और सोये हुए नगरों पर पहरा देती बत्तियों के पीछे से
तुझे आवाज़ दूँगा :
काले भारी भय की तरह स्तब्ध होगी पृथ्वी
और मृत्यु की तरह निःस्पन्द छाया हुआ होगा
आकाश

मेरे असंख्य अंश तेरी प्रतीक्षा करेंगे
यन्त्रद्वारों के पास—

१९६१

मुझे घृणा करने दो

यों ही चुप रहो,
और मुझे घृणा करने दो—
हरेक बस को पछियाती चली जाती है एक और बस
एक काले चाँद तक
अँधेरी गलियों में पवित्र प्रकाश की तरह
टिमटिमाती है मृत्यु;
नगर धड़कता है डूबते हृदय-सा;
यों ही चुप रहो
और मुझे घृणा करने दो—
गुर्राहट है, चीख़ है, शोर है
वह जो कभी संगीत था युवा अधरों पर;
चेहरे बनने की करुण चेष्टा में बिखरा
चीज़ों का एक विषम ढेर है;
यों ही चुप रहो
और मुझे घृणा करने दो—

मौन के आभामय आकाश में
यों ही रहो, प्यार से पीड़ित
अपनी कामना में ज्वलन्त;
और मुझे टूटी हुई सीढ़ियों
छप्परहीन मकानों
और सड़े हुए पेड़ों में से

अपनी घृणा में गुज़रने दो :
हवा में एक विषाक्त धुँआँ है
मुझे घृणा करने दो
खोजने दो हाथ वे
जीवन की पवित्र आग
जिनमें—
अब भी काँपती हुई शेष है
यों ही चुप रहो, घृणा करने दो
लौटने दो फिर तुम तक
तब तुम्हारे अबोध हाथ
उस आग को थामे होंगे—

यों ही चुप रहो
और मुझे घृणा करने दो—

१९६१

अन्त

मेरे जन्म से पहले मर गयी थी
देवताओं की बूढ़ी दुनिया,
और मैंने अपने बचपन से आज तक
बिना समझे सुने हैं
इस रंगारंग दुनिया के समाप्त होने की
कथाओं के आख़िरी हिस्से—
मैंने कभी नहीं चाहा कि इसे बचाऊँ
या अपने ढंग से बदलने में भिड़ जाऊँ,
मैंने कभी इसके लिए लड़ना नहीं चाहा
क्योंकि मैं हथियार चलाना नहीं जानता
और लड़ने में ऊब होती है,
और मैंने प्रार्थना करना भी नहीं सीखा···
मैंने दुनिया का कभी कुछ नहीं जाना
सिवा अपनी माँ की अक्लान्त करुणा
अपनी प्रेमिका के निविड़ प्यार के,
मैंने कभी नहीं जाना कि
कुछ और भी है जो जाना जा सकता है···
···और ऐसा भी हुआ
कि कभी-कभी मेरी अबोध आँखों में
एक धैर्य आ गया
और मैंने रातों के पीड़ित गर्भों में
आकाशों को चीख़ कर रोते
और मरे हुए देवताओं को अपनी लौह करुणा में

विकल होते देखा
और ऐसा भी हुआ
कि कभी-कभी मेरी भुरकस आत्मा में
एक शक्ति आ गयी
और मैंने दिनों के प्रखर तेज में
आकारों और चट्टानों को
रक्तिम प्रसवसंगीत में
किलककर नाचते देखा
और अब ऐसा हुआ है
कि मुझे मालूम हो गया है
कि उस अनिवार्य अन्त में
जब मैं मरूँगा, हम समाप्त होंगे
तो हमारी पड़ोसी चीज़ों के ढेर
हिलकर मानवीय हो उठेंगे
और हमारी मृत्यु
चीज़ों के लिए एक सौन्दर्य होगी

१९६०

हरी दीवार : एक पुरानी परिचिता के लिए

दीवार थी और हरी
और प्रार्थना-पुस्तक के एक साफ़ पन्ने-सी
खिड़की के सामने चुपचाप खड़ी

तुम आकाश का संगीत सुनती थीं
या सूरज का वसन्त देखती थीं
या आकाशनीम के मिथुन को ताकती थीं

तुम्हारी आँखें : धूप के दो जले हुए टुकड़े
और तुम धूप में गिरता हुआ एक पुराना खम्भा
और धूप हरी दीवार पर अँधेरे डालती हुई
और हरी दीवार सामने खड़ी हुई
प्रार्थना-पुस्तक के पन्ने-सी
और गाती हुई शोकगीत
तुम्हारे लिए

एक अपंग बच्चा अपनी दालान से
दीवार पर गेंद मारता है
तुम देखती हो !
एक झुका बूढ़ा आकर
दीवार के सहारे धूप खाता है
तुम देखती हो !

१९५९

ठण्ड की एक शाम : एक पागल औरत

मै कहीं जाना चाहती हूँ
मैं एक बँगले में घुस आयी हूँ
उसकी रोशनी की तरफ खिंचती हुई
चार-छह लम्बे पेड़ों के अँधेरे में-से घुसकर
मैंने कमरों में एक चीख़ भर दी है
और एक बच्ची को डरा दिया है
चाय पर बैठे लोगों को चौंका दिया है
और नौकर को घबरा दिया है
        बच्ची डरी हुई है : लोग चौंके हुए हैं
        माँ परेशान है, और नौकर मुझे मारकर बाहर
                                        ठेल रहा है
और मैं चिल्ला रही हूँ
                कि मैं कहाँ जाऊँ
मैं कहीं जाना चाहती हूँ :
अहाते से बाहर आसमान है,
                पेड़ हैं, बत्तियाँ हैं
और बँगले से लौटता मेरी याद से सहमता
एक युवा कवि है
        आसमान के पास दिल नहीं है
        पेड़ों के पास बाँहें नहीं हैं
        और बत्तियों के पास भाषा नहीं है
जिससे बात कर सकूँ :
मेरे पास एक दिल है

जो किसी बच्ची के साथ रहना चाहता है
मेरे पास दो बाँहें हैं
जो लोगों को घेर लेना चाहती हैं
मेरे पास भाषा है
जो किसी युवा कवि के हाथों रचना चाहती है
और
मैं कहीं जाना चाहती हूँ :

१९५९

••

दस वर्ष बाद बालसरवा से अचानक भेंट*

एक पीला पुराना दिन अचानक मिला :
उसके पास न उसकी पहले की धूप थी
और न पिछले पेड़ों की क़तारें,
सिर्फ़ एक गीला आकाश था
उसकी पुरानी पहचान—
मैंने उसे पहचाना और वह
और भी गीला होकर मेरे कन्धों पर झुक आया।
और मेरी आँखों में वह पुरानी धूप
और पेड़ों की सैकड़ों परछाइयाँ आ गयीं,
उसकी दुबली बाँहों के पास
कहीं कुछ चिड़ियों के बचपन की आहटें अब भी रुकी हुई थीं
और सूर्य के वसन्त के पहले उजाले में
सीढियों के एक लम्बे सिलसिले पर
फिसलते पैर और सहमते हाथ अब भी ठहरे थे
उसके हाथों में, उसके पैरों के पास,
बरसात की कुछ पुरानी धुनों में बुदबुदाते होठ थे
और ढलती दोपहरी में झरते फूलों के अँधेरे
और बादलों की रोशनियाँ

एक पीला पुराना दिन
बचपन की अनभ्यस्त उँगलियों से खिंची
कुछ टेढ़ी लकीरों में सहमता :

---

*राजकुमार तिवारी के लिए

अपनी आकाश-आँखों में
दो सूर्य डुबाये हुए
अपना भी : मेरा भी—
अचानक मिला
वह पीला पुराना दिन
मुझे :

१९६०

●●

'कुछ कविताएँ' पढ़कर*

दरवाज़े पर दस्तकें हैं
और खिड़की पर अचानक खिल आया है
एक फूल
परछाइयाँ चीरकर आयी आवाज़ों का
एक चेहरा है···

शामों के डबडबाये हुए दिल हैं
और आकाश का सिमटा हुआ रंग
लोगों के पैरों की नरम-नरम आवाज़ें हैं
और उनमें से झाँकता हुआ एक चेहरा

बरसात में धुला गुलाब
एक लय है
—जिसे खिड़की ने सुना है
और वह सिर्फ़ हलका सोनल उजाला है
जिसे मैंने देखा है···

१९५९

*श्री शमशेरबहादुर सिंह के लिए

••

हुसैन के एक चित्र की अचानक याद

उजाले की दो गहरी लाल आँखें
मुड़ गयीं उस सड़क पर
जो मेरे घर के अँधेरे के पास से
        गुज़रती हैं
तालाब पर सोये धुन्ध में
        खिलखिलाकर एक भूरी हँसी
हँसता है कोई
पेड़ों की अँधेरी क़तारों के शिखरों पर
        हँसता है कोई
घिर जाता है आकाश—काला
        —घर मेरा उभरता है, डूबता है
अँधेरे में, सड़क पर,
गहन लाल आँखों में छूटकर
एक मद्धिम पीली रोशनी में लगातार···

१९५९

••

अली अकबर खाँ का सरोद-वादन : 9

खिड़की से एक पीला गुलाब रह-रहकर टकराता रहा
वहीं वह झुकी खड़ी रोती रही
मैं सुनता रहा···
        कोई अपनी उँगलियों से
        काँपता-काला आकाश
        मेरी ओर खींचता रहा
        खींचता रहा—

१९५९

••

अली अकबर खाँ का सरोद-वादन : २

(रेडियो पर, वसन्त की एक मद्धिम रात में)

सीढ़ियों पर सहमकर चिपटा रह गया
एक हाथ

(वादन समाप्त होने पर अनुलेख)

वसन्त का उजाला
पीला और धीमा
और उसमें खिलता-काँपता
चट्टानों और फूलों का एक सोनल आकाश :
मैंने पलट कर पीछे देखा—
—वह थी
पीछे आती हुई
पर यकायक घुल गयी
परछाइयों के बीच—
रह गया वहीं का वहीं
एक दिन का उत्सव,
उसका कुहरा, उसकी सुबह, उसकी धूप
और उसके तोतों की हरी लकीरें !

सीढ़ियों पर सहमकर रह गया
एक हाथ

उँगलियों से फूट-फूटकर बहता रहा
उजाले का एक नरम बहाव—
सहमकर रह गया एक हाथ :

खजुराहो जाने से पहले

पत्थर सिर्फ़ पत्थर नहीं चेहरे होंगे
चेहरे सिर्फ़ चेहरे नहीं लोग होंगे
लोग सिर्फ़ लोग नहीं पत्थर होंगे

मैं कौन-सी आवाज़ें ढूँढूँगा
पत्थर की उन आकृतियों में
जो चुप रहेंगी कविताओं की तरह—
आवाज़ों की इस बहुत बड़ी दुनिया में
पत्थर भर है—जो चुप है
और मरे हैं या जीवित हैं,
मैं जो आवाज़ों को प्यार करता हूँ
उनसे घिरा हूँ
उनसे अपना छोटा संगीत बुनता हूँ
मैं वहाँ कौन-सी आवाज़ें ढूँढूँगा ?

मेरे लिए तो सब नये होते हैं
और सब खोये हुए
और सब चुप
मैं सबको अपने लिए खोजता हूँ,
पाता हूँ—आवाज़ों से घेरता हूँ।

क्या मैं भी पत्थर की ओर लौट रहा हूँ ?
गुलाबों और अँधेरों में से
संगीत में से
क्या लोग सिर्फ़ पत्थर की ओर लौटते हैं ?

१९५६ ●●

वसन्तगीत

यहाँ से गया था वह
घास के कपड़े पहनकर
और उसकी आँखों में एक पूरा आकाश था
यहाँ से लौटा था वह
अपने पुष्पित नंगे अंग लिये
और उसके मन में एक पूरी धरती थी।

१९५९

हरियाली देखकर

ये बड़े हाथ छोटे हों
मेरी कड़ी गदलियाँ नरम बनें :
यह हरा-हरा-सा जल
थोड़ा-सा पी लूँ मैं,
अपनी फूलों-वनी नाव
फिर सोचूँ
अगर बहा दूँ
कब तक, कितनी दूरी तक तैरेगी
हरे-हरे-से जल में !
ये बड़े हाथ छोटे हों—
मेरी कड़ी गदलियाँ नरम बनें !

१९५८

••

वर्षान्त

वर्षान्त किसी की प्रतीक्षा नहीं करता
मेरी या तुम्हारी।

हरे-हलके बाँसों से
एक दिन अचानक आ
मुट्ठी से अन्तिम बादल बह जाने देगा।

फिर किसी दिन चौंक कर
देखेंगे हम :
अरे, यह खिड़की पर
इन्द्रधनुष कौन रच गया है,
किसने ये ढेर हरसिंगार ला धरे हैं ?

वर्षान्त प्रतीक्षा नहीं करता
मेरी या तुम्हारी या किसी की।

१९५९

विदागीत

भागते हैं,
छूटते ही जा रहे हैं पेड़
पीपल-बैर-बरगद-आम के,
बिछुड़ती पग-लोटती घासें,
खिसकती ही जा रही हैं
रेत परिचय की अनुक्षण,
दूरियों की खुल रही हैं मुट्ठियाँ !
फिर किसी आवर्त्त में बँध
कभी आऊँगा यहाँ
रेत जाने किन तहों तक धँसेगी
परिचय न चमकेगा कहीं भी
चुप रहेंगे पेड़-धरती घास सब···
तब मुझे पहचान
छोड़ता हूँ आज जिसको
टेरेगा सहसा क्या
विदा का बूढ़ा-सा पाखी ?

१६५७

ये महज़ एक ख़याल है

ये महज़ एक ख़याल है
कि मैं यहाँ फिर कभी आऊँगा
वैसे कोई बड़ी बात नहीं है
और यहाँ के बारे में तो और भी नहीं
एक लम्बी-सी सड़क है
—कोलतार की
और उसके दोनों ओर
पेड़ों की बेढब-सी क़तारें हैं
बीच-बीच में आसमान के नीले टुकड़े हैं
और शायद एकाध सफ़ेद बादल भी
वैसे कोई बड़ी बात नहीं है
और यहाँ के बारे में तो और भी नहीं।

ये महज़ एक ख़याल है
कि मैं यहाँ फिर कभी आऊँगा
मैं एक सफ़र के दौरान यहाँ से गुज़र
रहा हूँ
लगता है दूर कहीं घण्टे बज रहे हैं
बुलानेवाले नहीं, लौटानेवाले
जैसे कह रहे हों :
जाओ,
गुज़र जाओ
फिर कभी आना

वैसे कोई बड़ी बात नहीं है
और यहाँ के बारे में तो और भी नहीं।

ये महज़ एक ख़याल है
कि मैं यहाँ फिर कभी आऊँगा।

१९५९

सूर्योदय से पूर्व कवि-जागरण

पुरानी लकड़ी के मेरे मज़बूत दरवाज़े पर
एक कमज़ोर और उभरी नसोंवाले हाथों की
ताबड़तोड़ दस्तक है
और मैं जो जागा हुआ
अपने लैम्प के दूधिया प्रकाश में
दूसरों की कविताओं के पास चुपचाप बैठा हूँ
जानता हूँ
कि बाहर कुहरे में एक सुबह ऐंठी हुई-सी
सुगबुगा रही है
सड़क पर भैंसों-भेड़ों के गुज़रते हुए कई झुण्डों
और शहर आयी घास की पहली गाड़ियों की
खड़खड़ाहट के साथ—
जिसमें बच्चे और अधेड़ लपककर दूध लेने जा रहे हैं
मैं दूसरों की कविताओं के पास चुपचाप बैठा
उस दस्तक में फिर से जाग रहा हूँ
और एक तेज़ संगीत-सा उसे सुन रहा हूँ

× × ×

मेरी प्रेमिका कण्डे बेचते हुए अभी यहाँ आयेगी—
मेरा भाई बिस्किट-रोटी बेचता हुआ,
मेरी माँ तरकारी-भाजी बेचती हुई,
और मेरे दोस्त अख़बार बेचते हुए
और मेरे पिता पानी भरते हुए
यहाँ आयेंगे

और मेरे पुराने क़िस्म के मकान को घेर लेंगे :
मैं खिड़की से कूदकर भागना चाहूँगा
और अहाते में पकड़ लिया जाऊँगा
लोहे के तारों से, कठचन्दन के पेड़ से, पुराने दरवाज़े
और परदे ढँकी खिड़कियों से, पड़ोसी बुढ़िया
और दकियानूस मुहल्ले से मुझे दिन-भर के लिए
बाँध दिया जायेगा —
यकायक मेरे दिल को गरमी मिलने लगेगी
एक दुबले हाथ की गरमी
और उसकी ताबड़तोड़ दस्तक चुप जायेगी
एक आसमान मेरे सिर पर बैठ जायेगा
और मैं चारों ओर धूप फेंकने लगूँगा

१९६०

एक आदिम कवि का प्रत्यावर्तन

मैं एक जीवित सभ्यता लाया हूँ, लोगो !

तुमने देखा है सड़ने लगे हैं नगर और फल
और मरे हुए हैं गेहूँ-धानों के खेत और उछाह
अर्राकर गिरती हैं पड़ोस की दीवारें और मित्रताएँ
टूटते हैं दरवाज़े और बूढ़े सक्रिय लोग
पड़ोस एक सड़ाँध देता धुँआ है…

मैं एक जीवित सभ्यता लिये दौड़ा आया हूँ
लोगो—

मेरा चेहरा सोनल नहीं है
(तुम उसमें लावे की झुलस देखते हो !)
और मेरी हथेलियाँ भरी हुईं
मांसल गन्ध डूबी नहीं हैं
(तुम उनमें चट्टानों की परतें देखते हो !)
और मेरे होठ नहीं हैं जलते हुए उद्दीप्त
(तुम उनमें डूबे जल-स्रोत देखते हो !)
तुममें से किसी को जब बाँहों में कसूँगा मैं
तो लोगो, तुम जानोगे
कि मुझमें मांसपेशियों की उत्तेजना भी नहीं है
मुझमें नहीं है मांस की घाटियाँ
और तेज़ रक्त-झरने
मुझमें चट्टानें हैं सिर्फ़

हड्डियों की
लोगो, मैं इन्हीं हड्डियों की
एक जवित सभ्यता लाया हूँ

लोगो, यह आकाश तुम्हारे कन्धों पर
वस्त्र-सा पड़ा होगा
और जहाँ नहीं हैं
वहाँ भी देखोगे तुम फूलों के अनगिनत अग्निवन
लोगो, मैं लदी हुई डालें और जीवन्त पत्तियाँ लाया हूँ
लोगो, मैं आया हूँ :
लोगो, तुम हँसे थे—धरती अन्दर काँप गयी थी

तुम रोये थे—घाटियाँ पिघल गयी थीं
तुमने गाया था—झीलों पर कुहरा घिर आया था
लोगो, मैं सभ्यता का काव्यमुख लाया हूँ
ये मेरी छाती धरती की याद है
ये मेरी जाँघें घाटियों का प्रेम हैं
ये मेरी आँखें झीलों का रूप हैं
लोगो, मैं तुम्हारी आदिम हँसी हूँ
मुझमें तुम्हारा वह आँसू संग्रहीत है
मेरा हृदय डूबा है
तुम्हारे उस आदिम संगीत में :
तुम्हारी आँखों में
तुम्हारे होठों पर
तुम्हारे कण्ठों में
मैं लौट आया हूँ
मैं रक्त नहीं मांस नहीं
हड्डियाँ हूँ तुम्हारी

असंख्य जड़ ऋतुओं के गर्भ से
मैं एक पुरातन सन्तति हूँ
एक जीवित सभ्यता लाया हूँ,
लोगों, मैं आया हूँ—

लोगो, यह आभा हड्डियों का सूर्योदय है
लोगो, यह छाया हड्डियों की तितलियों का घेरा है
लोगो, यह प्रेम फूलचेहरों पर मेरी हड्डियों की छाप है
लोगो, यह जीवित सभ्यता है
जो लाया हूँ

लोगो, मैं आया हूँ—

१९६०

कवि-वक्तव्य

हम सब दुपहर के एक संगीत में
छुपे हैं—
और लोग हमें
सड़कों में, कमरों में,
आफ़िस में, पार्कों में
और होटलों में झींखती भीड़ों में
खोज रहे हैं—
हम सब एक संगीत की लय में
उसके सुरों में लिपटकर दुबके हुए चुप हैं—
और लोग हमें एक आकाश के नीचे
सूने पेड़ों और
रूखे टीलों के दृश्यों में
खोज रहे हैं—
लौटेंगे
हम
लौटेंगे हम
वह निष्कम्प ऋतुशिखा देख
वह,
जिससे ज्योतियाँ चुराकर
पत्ती-पत्ती फूल जलाता फिरता है वसन्त
लौटेंगे हम
तितलियों की तरह नये शब्द लिये
और ये लोग

यह धूप
ये सड़कें
ये दृश्य
डूब जायेंगे शाम के एक मद्धिम संगीत में
हम लौटेंगे—

१९५६

लोगों के बीच से एक यात्रा

घर हैं और बेहिसाब हैं
और लोग भी बेहिसाब हैं,
हैं और मैं उन्हें रोज़ देखता हूँ।
खिड़कियाँ और दरवाज़े
बन्द हैं या खुले हैं या उड़के हैं।
हैं और उनके सामने
पेड़ हैं कठचन्दन, बकौली या नीम
या बेलें हैं एकाध—
जिनमें फूल हैं;
अन्दर भी घरों के फूलों के गुच्छे हैं :
बच्चे या औरतें !
हैं और मैं उन्हें रोज़ देखता हूँ !
मन्दिर के पास से गुज़रती सड़क पर
बत्तियों के खम्भे और रोशनियाँ हैं।

इस तरफ़ एक अधबना स्कूल है
और पास ही फैले तालाब पर
डूबता सूरज, झुकता आकाश, बिखरे बादल,
लौटते पक्षी
एक बिलकुल पारस्परिक चित्रकृति बनाते हैं
और मैं उस तरफ़ बहुत कम देखता हूँ;
देखता हूँ इधर, जहाँ स्टैण्ड या बिजलीघर है
घरघराता

न मैं और न शायद वे ।

हैं और मैं उन्हें रोज़ देखता हूँ
जैसे स्टेशन पर किसी और को विदा देने
भीड़ आयी है
और मैं बिलकुल अजाने
उसे हाथ हिलाकर छोड़ रहा हूँ ।

हैं और उन्हें रोज़ देख रहा हूँ
उस ओर मौन के सिर्फ़ देख रहा हूँ—

१९५९

••

लोगों का त्यौहार

लोग होंगे
रंगीन और उजले कपड़ों में मढ़े हुए
सस्ती चीज़ों से अपनी खुशियाँ मनाते
लोग होंगे
फूट-फूटकर उमड़ते हुए
सड़कों पर
हर अगले आदमी को धकाते
चखचख करती औरतें होंगी
और खो-खो जाते बच्चे
और रखवाली करते धूप-खाये
लोग होंगे
चीरती-चिल्लाती अनगिनत आवाज़ें होंगी
और मेरे होठों पर जागेगा
एक प्यारा-सा हलका संगीत
और मैं थिर रहूँगा
एक धमनी की तरह :
और लोग मुझमें-से गुज़र जायेंगे
अँधेरे के लोग और उजाले के लोग
और लोगों का त्यौहार
और उनकी भीड़ें और उनके तमाशे
उनकी चिल्लाहटें और उनके कीर्तन
और उनके देवता और उनकी झण्डियाँ
मुझमें से सब गुज़र जायेंगे

और थिर रहूँगा
एक धमनी की तरह :
लोगों के क़दम सड़कों पर नयी इबारतें लिख देंगे
और नये सवाल
और पिछली बार के कुछ हल
और इस शहर के डूबते दिल को
खून के चार-छह क़तरे और मिल जायेंगे
और रोशनियों की कुछ और तसवीरें उभर आयेंगी
मैं थिर रहूँगा :

लोग पिचके हुए गुब्बारों की तरह
घरों के बेरहम हाथों में फिर वापस लौट जायेंगे
और सड़कें साल-भर के लिए फिर मर जायेंगी
—औरतें फिर पानी भरा करेंगी
और बच्चे फिर पेड़ों पर चढ़ा करेंगे
और मकान लोगों की चुटकियाँ बनाकर फोड़ा करेंगे

मुझमें से होकर गुज़रते रहेंगे लोग
और उनमें कहीं मेरा खोया भाई भी होगा
कहीं मेरी आनेवाली बहन भी मचलती होगी
और उनमें कहीं मेरी माँ भी होगी
आनेवाले बच्चे की आभा से पीली अलसायी
और मैं थिर रहूँगा
एक धमनी की तरह :

लोग सूरज को अपनी आँखों में क़ैद कर
अपनी अँधेरी खिड़कियों पर लौट जायेंगे
पर एक नया पुल ज़रूर बनता रहेगा

—अगले त्यौहार तक
हँसी के ऊपर, चुम्बन के ऊपर, आँसू के ऊपर
शाम के ज्वार पर खिलते गुलाबों के ऊपर
लोग चिल्लाते रहेंगे
पुकारते रहेंगे
उनकी आवाज़ें एक मौन में ढलती रहेंगी
और मुझमें से गुज़रते रहेंगे
और मैं थिर रहूँगा
एक धमनी की तरह :

१९५९

एक छोटा शहर

मैं देखता हूँ इस धूप को
और इस सड़क को
साथ-साथ जाती हुई
उस मैदान तक
जहाँ सहमी सड़क एकदम फैल जाती है
और बिखर उठती है दुबकी धूप
पर जहाँ या तो बच्चे होते हैं
खेलते हुए
या बूढ़े, प्रार्थना करते हुए
और मैं नहीं होता न वहाँ और न आस-पास कहीं—
मैं देखता हूँ इस धूप को
और इस सड़क को

धीरे चलनेवाली एक बेहद गन्दी ट्रेन
रुकती है स्टेशन पर और
इतना धुआँ छोड़ती है कि देख लेता हूँ
या इतनी जोर से चीख़ती है कि मैं जान लेता हूँ
लोग उतरते हैं
बहुत साफ़ दिखने की कोशिश करते हुए
और उन्हीं में कहीं
छोटे क़द और मोटे होठों वाला मैं भी।
और इधर दरवाज़े पर या छत से

मैं प्रतीक्षा करता हूँ उस ताँगे की
जो मुझे घर ले आयेगा
भूरी-काली सड़कों के कई मोड़ घुमाता हुआ

मैं अपनी जेब में एक शाम लिये घूमता हूँ
और जब लगता है कि कॉफ़ी पीना चाहिए
या उस सड़क पर चल देना चाहिए
जिसके दोनों ओर पेड़ ही पेड़ हैं
इतने-इतने और इतने सुन्दर
और जिस पर अफ़सरों की या ईसाई लड़कियाँ सड़क घेरकर
चलती हैं, खेलती और मुसकराती हुई
या जब मैं किसी गीत की लय याद कर
उसकी किसी पंक्ति का भूला शब्द छोड़कर
एक नया गढ़ना चाहता हूँ
जब जेब में हाथ डालकर छू लेता हूँ
उस शाम को
और महसूस करता हूँ
प्यार जैसी कोई चीज़—

रोज़ कोई न कोई मुझे गढ़ना चाहता है
रोज़ मैं मिट्टी के महकते लोंदे-सा
किन्हीं हाथों में होता हूँ
और रोज़ लौट जाता हूँ या फेंक दिया जाता हूँ
परदों, खिड़कियों और मेज़ों के बीच
कठोर पत्थर बनाया जाकर
जिसे तराशना या गढ़ना उन हाथों ने नहीं सीखा है
रोज़ फिर भी कोई-न-कोई···

कहीं कोई गिटार नहीं बजाता
और न ही किसी की खूँटी से लटकती है उलटी वायलिन
फिर भी एक संगीत
लोगों की अपूर्णताओं को ढाँकता रहता है

बच्चे काग़ज के हवाई जहाज़ के अलावा भी कुछ हैं
और लोग भी
दूकानों-छतों-गलियों में खिची लकीरों से बहुत कुछ ज़्यादा
कुछ बदलता नहीं है कहीं भी
लोग सोचते भर हैं कि बदला है
आधा चाँद लेकर भी लोग खुश होते हैं
और मेज़ पर, बैठकख़ाने में उसे सजाते हैं
और खुश होते हैं
गो कि लकीरों से बहुत ज़्यादा हैं वे

सड़कें उतर-चढ़कर खो जाती हैं
पेड़ एक विदेशी लैण्डस्केप बनाकर बुझ जाते हैं
चुप दूर तक दौड़कर थक जाती है
मकान और चौराहे
फ़िल्म के सूने सेट से भरे और ख़ाली और छोटे लगते हैं
आकाश जहाँ से दिखता है
टुकड़ों में नहीं, पूरा दिख जाता है
और सड़क के किनारे की बत्तियाँ तभी जलती हैं
जब चाँद नहीं निकलता
और मैं
जैसे एक समुद्र से, एक रात से
एक खोह से निकलता हुआ आता हूँ

और डूब जाता हूँ
ठण्डे भोजन कुनकुने दूध
अख़बारों और पुस्तकों में
एक असहाय बच्चे-सा

१९५९

एक कविता-क्रम

(स्वतन्त्र रूप से लिखी गयीं सम्बद्ध कविताएँ)

१ : पराजित

वह मुझे पहचानता नहीं था
और मैं उसके पास जाना चाहता था—
जब किसी ठिठुरती रात में
वह किसी ढाबे में भूख से व्याकुल
गोश्त की बोटियाँ चूस रहा होता था
मैं दूर बैठकर देखता था
उसके चेहरे पर धीरे-धीरे प्रकट होती तृप्ति
—वह तब अपना अकेलापन पसन्द करता होगा
अपने शरीर को सुखद गरमी के साथ—
उसके पास पहुँचने की तब कोई आशा नहीं हो सकती थी
और तब भी नहीं
जब वह अधीरता से
डाकिये की प्रतीक्षा करता था
क्योंकि उसे बताया नहीं गया था
और उसे मालूम नहीं था
तब वह इतने गहरे होता था
कि उससे मिला नहीं जा सकता था :
फिर मुझे एक रात पता लगा
तो मैं दौड़ता-दौड़ता उसे खोजने चला—

कुछ लोगों की भीड़ में शान्त वह आ रहा था
अपनी माँ को अस्पताल से मरघट पहुँचाकर
मैंने देखा—
वह अपने सूखे होंठों पर बार-बार जीभ फेर रहा था
उसकी आँखें दूर सड़क के मोड़ पर टिकी थीं
सबके पार
वह अब बिलकुल अकेला था
यह अन्त था
मैंने उसे खो दिया
और असफल ईश्वर के पास लौट आया
जहाँ मुझे मालूम है
वह कभी नहीं आयेगा।

१९६२

२ : ईश्वर

मैंने उसे देखा नहीं था
पर अँधेरे में भी परिचित उस सड़क पर जाते हुए
उसे साथ चलते मैं अनुभव करता रहा था।
—जब सामने से आती किसी कार की रोशनी से
मैं छिप जाता था
पहचाने जाने के डर से
तो कहीं बहुत पास सुनाई दे जाती थी
एक संगीत-चाप—
और फिर मैं जब मकान में घुसकर
अपनी घबराहट और उत्तेजना में
सीढ़ियों पर लड़खड़ा गया था

तो मुझे लगा था कि उसने मुझे सँभाल लिया है।
कमरे के सुगन्धित अँधेरे में
वह विभोर थी प्रतीक्षा में
चुम्बन में बँधते
हमने कृतज्ञता अनुभव की थी
कि वह कमरे के बाहर कहीं
रखवाली कर रहा है।
धीरे-धीरे जब हम उसे भूल गये
एक-दूसरे में डूबते
हम जब विह्वल होकर
खोजने लगे भविष्य में खोये अपने शिशु का चेहरा
तो दरवाज़े पर एक दस्तक-सा खटका हुआ
मुझे लगा
शायद कोई जाग गया है
और वह हमें सचेत कर रहा है—
जल्दी से उसे अन्तिम चुम्बन देकर
जब धीरे से मैं बाहर आया
तो धुँधलके में
मैंने देखा—मैंने पहली बार उसे देखा :
उसका काला-दुबला-सा शरीर हाँफ रहा था
एक पिचके चेहरे में आँखें नीचे झुकी थीं
उसके हाथ में शायद करताल थी
डण्डे, गँड़ासे और झण्डे लिये खड़ी एक भीड़ के पीछे
खड़ा था वह
और उसके पीछे
दूर कहीं
भोर का संकीर्तन था।

१९६२

३ : सम्भावना

शहर अब भी एक सम्भावना है
जाड़ों की एक दोपहर
एक व्यस्त सड़क पर
स्वेता के मित्र-हाथों को छूकर मैंने जाना—
मेरे हाथ ज़रा-सी देर बाद भूल गये
स्पर्श को
और हमेशा की तरह अकेले मेरे पास रह गये
ट्रैफ़िक सिगनल पर रुकी हुई भीड़ में
                    कहीं नहीं था
मेरे शरीर के लिए कोई अर्थ,
कहीं नहीं थी वह शान्त निजी गरमी
जिसे मैं अपना प्रेम कह सकता—
एक हलकी-सी अप्रासंगिक हवा थी
जिसे झटका-सा देती हुई रुक गयी एक बस :
हैण्डल पकड़ते अपने हाथों को
मैंने दु:खी होकर देनी चाही अपनी करुणा
तो याद आये वे हाथ,
जो अभी थोड़ी देर पहले उनमें थे,
उनसे जुड़ा वह शरीर जो प्रतिफलित हो चुका है
एक और शरीर में,
और फिर मुझे मिल गये कुछ शब्द
जिन्हें मैं वहाँ रख सकता था
जहाँ पहले वे हाथ थे—
खिड़की के हवा के ठण्डे झोंके से सिहरते हुए

मेरे हृदय में हाथों के लिए
कविता के लिए
अब एक आशा थी

शहर अब भी एक सम्भावना है !

१९६३

४ : अनुपस्थिति

शाम है
आख़िरी धूप है
और दीवार के सहारे
घुटनों में सिर छिपाये
बैठी है एक लड़की,
अपने आस-पास धूम मचाते
बच्चों से बेख़बर,
बेख़बर उन शब्दों से
जो मैं चुपचाप
उसके पास रख देता हूँ
अपने प्रेम में,
—मेरे शब्द
जो उसकी उदास ग़रीबी को
एक चमक-भर दे सकते हैं
कोई अर्थ नहीं।

दूर बस-स्टैण्ड पर
धूप के एक पीले आयत में

अपनी दैनन्दिन भाषा के साथ
लोग हैं
प्रतीक्षा में,
उनकी निर्जल आँखें
चमक उठती हैं बार-बार
उनके नरक-स्वप्नों से।

यकायक बढ़ता है
नीरव
        अँधेरा—
रात के साथ
आती हैं बसें
एक के बाद एक भर्राती हुई,
मैं चौंककर देखता हूँ—
सामने की झिलमिलाती इमारतों के पीछे से झाँकता
पहले का मन्दिर अब नहीं रहा—

लोग चल दिये,
चली गयी लड़की भी—
दूर किसी झोंपड़ी में
कोई
अपने बच्चे को चीख़कर पुकारता है

मेरे शब्द
मैं नहीं जानता
अब कहाँ हैं ?

१९६४

५ : निश्शब्द

एक ऊँची इमारत की पाँचवीं मंज़िल की
एक खिड़की से
एक आदमी ने अपने को बाहर फेंक दिया है
मेरे शब्द उछलकर
उसे बीच में ही झेल लेना चाहते हैं
पर मैं हूँ
कि दौड़कर लिफ़्ट में चढ़
दफ़्तर तक जाता हूँ
पता लगाने
कि नयी जगह पर नियुक्ति कब होगी !

बाहर आता हूँ
सड़क पर जमा भीड़ से बचकर
चमेली का गजरा और
दो गुब्बारे ख़रीदता हूँ
और
निश्शब्द
घर जाता हूँ ।

१९६४

६ : शहर के पार—मौत !

महीनों बाद लौटकर आता हूँ अपने शहर
और खुदी हुई सड़कें देखकर
शहर के पार चिल्लाता हूँ—मौत ।
कोई नहीं सुनता
        न कोई ध्यान देता है

एक मन्दिर के पास बैठा एक पागल
सूरज की ओर देखते हुए
खिलखिलाकर हँसता है—

लँगड़ाती हुई एक लड़की
हाथ में पुस्तकें और कापियाँ दबाये
धीरे-धीरे लौटती है अपने घर की ओर
ऊँची इमारतों और भर्राते टैम्पों के बीच
वह निरन्तर चलती रहती है···
अपने घर के भारी दरवाज़ों
बूढ़ी माँ और छोटे भाई की ओर
और स्वर्गीय पिता की ओर
अपने युवा चेहरे पर अनन्त लिये

मैं चिल्लाता हूँ—मौत ।
बसों की प्रतीक्षा में
चाय की दूकानों पर बैठे लोग
गालियाँ देते हैं, ठहाका मारकर हँसते हैं—

परछी में धूप खाते हुए
बुढ़ापे से लगभग अन्धे बाबा के सामने

आकर फुदकने लगती है एक चिड़िया
बाबा ग़श खाकर गिर जाते हैं
कुरसी पर
और चिड़िया उछलकर
बैठ जाती है उनके कन्धों पर
मैं चिल्लाता हूँ—मौत !
तभी बाबा आँखें खोलते हैं
और पूछते हैं—क्या बजा है ?

आसमान अपना नीलापन धीरे-धीरे छोड़ देता है।
पुराने अँधेरे में लिपटकर सोता है शहर।
ऊँची आवाज़ में चिल्लाता है एक मूँगफलीवाला
पास सोयी बहन सपने में खिलखिलाती है।
मैं भी मुसकराता हूँ।
खिड़की से ठण्डी हवा का एक झोंका आता है।
मैं डूबता जाता हूँ नींद में
मौत से बेख़बर और शान्त।

मन्दिर की छाया में पागल
धीरे-धीरे अकड़ता है
ठण्ड में।

१९६४

७ : उसके बाद

वह चली गयी है
लेकिन अपना शहर,

जो मेरे और उसके बीच
कभी एक चट्टान था
कभी एक नरम बिस्तर,
मैंने नहीं खोया है,
मेरी भाषा अब भी मेरे पास है।

नगरपालिका को कोई ख़बर नहीं है
इस सब की—
और उसका भाई
किताबों की दूकान में
मुझसे अदब से मिलता है।
माँ के चेहरे पर
दैवी उदासी है,
करुणा सिर्फ़, बूढ़े चेहरों
जूठे बरतनों के पीतल में झलकती है!

सुख और तृप्ति की याद के आर-पार
हृदय स्पष्ट देखता है
ऊबड़-खाबड़ उदासीनता
और शहर को—

एक अकेली खिड़की खुलती है
एक अपरिभाषित आकाश पर
एक निस्तब्ध सड़क पर
अपने शब्दों को भय में लपेटे
पर सीटी बजाता हुआ
रोज़ रात गये
मैं लौटता हूँ अपने घर।

१९६५

प्रार्थना और चीख़ के बीच

जहाँ तुम थीं
अपने नाचते शरीर से
अन्तरिक्ष को प्रेम जैसे
एक संक्षिप्त अनन्त में ढालते हुए
वहाँ क्या मैं रख सकता हूँ शब्द—
उनका कोई संयोजन जो काव्य हो सके ?
तुम्हारा मुक्त अकेलापन
आलोकित आकाश है
जिसे मेरी कोई कामना, कोई चीख़
छू भी नहीं सकती !
वहाँ अतीत एक किरण है
और भविष्य एक अचानक फूल :
शाखाएँ कुसुमित होती हैं मुद्राओं में
मुद्राएँ एक नीरव प्रार्थना हैं
और संगीत एक अकेलापन
चट्टानें फूल हैं और फूल चट्टानें
शरीर एक समुद्र
और समुद्र एक आकाश
और आकाश एक अकेली चीख़
और चीख़ एक सम्पूर्ण प्रार्थना।

मैं देखता हूँ
धीरे-धीरे पास आते अन्त को :

नदी एकाकार होती है समुद्र से अनजाने
जल लौट आता है
समय और कामना में—
पहली बार मैं पहचानता हूँ;
शब्दों के अवसाद में
प्रार्थना और चीख़ के बीच स्थगित
कविता
जो कहीं नहीं रखी जा सकती।

••

भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक - हितकारी
मौलिक-साहित्य का निर्माण

●

संस्थापक
स्व० साहू श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्ष
श्री श्रेयांस प्रसाद जैन

मैनेजिंग ट्रस्टी
श्री अशोक कुमार जैन